कवि रैदास : एक सबाल्टर्न चिंतन

सम्पादक
आशीष कुमार 'दीपांकर'

अनुसंधान पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स
कानपुर

Scanned by CamScanner

ISBN : 978-81-934317-7-1

प्रकाशक :
अनुसंधान पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स
105/249, चमनगंज, कानपुर–208001
मो. 9415538696/9044918670
Email :
anusandhan.prakashan@gmail.com

संस्करण : प्रथम 2018

© सम्पादक/लेखक

मूल्य : 750/-

कम्प्यूटर कम्पोजिंग : रुद्र ग्राफिक्स, कानपुर
मुद्रक : साक्षी ऑफसेट, कानपुर

Scanned by CamScanner

15. सामाजिक परिवर्तन और गुरु रविदास का वैज्ञानिक विचार — 104
दिनेश कुमार
16. संत रैदास की दृष्टि : हिन्दू राष्ट्रवाद का प्रतिकार — 121
सुरेश कुमार
17. नस्लीय श्रेष्ठता और वर्णवादी मूल्य बनाम रैदास की कविता — 128
राम बचन यादव
18. भारतीय संविधान और दलित साहित्य — 134
रामबृज गौतम
19. समकालीन विश्व में गुरु रविदास के विचारों की प्रासंगिकता — 136
डॉ. श्रवण कुमार गुप्त
20. वर्तमान सन्दर्भ में अनुसूचित जाति/जन जाति के बीच चुनौतियाँ — 146
अरूण सिंह पटेल
21. संत रैदास का साहित्य और वैकल्पिक समाज की अवधारणा — 152
हरिकेश गौतम
22. मुगलकाल में निर्गुण भक्ति और संत रविदास — 159
दुर्गेश कुमार देव
23. आदर्श राज्य की अवधारणा और गुरु रविदास — 164
शिवेन्द्र कुमार मौर्य
24. गुरु रविदास का चिंतन और संवेदना — 171
आनंद दास
25. संत रविदास के साहित्य में सामाजिक चिंतन — 176
प्रदीप कुमार
26. संत रविदास और दलित चेतना का स्वरूप — 180
सगीर अहमद
27. संत रविदास द्वारा प्रतिपादित मूल्यों की प्रासंगिकता — 186
रुकसाना खातून
28. संत रविदासीय साहित्य की सामाजिक और सांस्कृतिक — 191
संसर्गशीलता एक दृष्टि निक्षेप
डॉ. लीम चन्द
29. मानवता के मार्गदर्शक : गुरु रविदास — 200
डॉ. संजीव कुमार विश्वकर्मा
30. जाति-वर्ण और संप्रदाय के बरक्स — 205
शुभम यादव
31. समतामूलक समाज निर्माण की प्रतिबद्धता और संत रैदास — 208
अनीश कुमार
32. गुरु रैदास का सामाजिक आन्दोलन — 212
संतोष कुमार

Scanned by CamScanner

समतामूलक समाज निर्माण की प्रतिबद्धता और संत रैदास

अनीश कुमार

युग पुरुषों की भांति संत भी अपने युग की मांगों की उपेक्षा नहीं कर सके । उनके काव्य में उनका युग दृष्टिगत होता है। उनकी रचनाओं में उनके व्यक्तित्व के तीन रूप क्रमशः साधक, सुधारक और धर्मगुरु हमारे सामने उपस्थित होते हैं। संत केवल संत होते हैं, उनकी कोई जाति नहीं हुआ करती हैं। संत गुरु दुर्लभ होते हैं। गुरु में संतभाव का गुरु किसी के लिए भी सौभाग्य की बात है। प्राचीनकाल से ही भारत में विभिन्न धर्मों तथा मतों के अनुयायी हुए हैं। मेल-जोल और भाईचारा बढ़ाने के लिए संतों ने समय-समय पर अपना महत्त्वपूर्ण योगदान इनमें दिया है जिसमें संतों में रैदास का नाम अग्रणी है। इनकी रचनाओं की विशेषता लोक-वाणी का अद्‌भुत प्रयोग रही है, जिससे जनमानस पर इनका अमिट प्रभाव पड़ता है। संत रैदास के कई नाम प्रचलित हैं, जैसे रैदास, रायदास, रुद्रदास, रूईदास, रयिदास, रोहिदास, राहदास, रमादास, रामदास, हरिदास आदि। इसमें सर्वाधिक प्रचलित नाम रैदास और रविदास है।

विभिन्न विद्वानों के अनुसार इनका जन्म 25 फरवरी सन 1376 ई. में माघ पूर्णिमा दिन रविवार को बनारस के पास सीरगोवर्धनपुर या मांडूर्गढ़ नामक स्थान पर हुआ था। कुछ विद्वान 1398 में इनका जन्म बताते हैं। मान्यता है कि रविवार के जन्म होने के कारण इनका नाम रविदास रखा गया था । इनके पिता संतोखदास (रघुराम) और माता करमा देवी थी। रैदास बचपन से दयालु, परोपकारी और साधु-संतों के साथ सत्संग किया करते थे। जिससे उनके माता-पिता उनसे अप्रसन्न रहते थे। कुछ समय बाद उन्होंने रैदास तथा उनकी पत्नी को अपने घर से अलग कर दिया। रैदास पड़ोस में ही अपने लिए एक अलग झोपड़ी बनाकर तत्परता से अपने व्यवसाय का काम करते थे। शेष समय ईश्वर-भजन तथा साधु-संतों के सत्संग में व्यतीत करते थे। उनकी समयानुपालन की प्रवृत्ति तथा मधुर व्यवहार के कारण उनके सम्पर्क में आने वाले लोग भी बहुत प्रसन्न रहते थे। यह कहा जाता है कि रैदास अनपढ़ थे, किंतु संत-साहित्य के ग्रंथों और गुरु-ग्रंथ

Scanned by CamScanner

साहब में इनके पद पाए जाते हैं। वे स्वयं मधुर तथा भक्तिपूर्ण भजनों की रचना करते थे जिन्हें लोग भाव-विभोर होकर सुनते थे।

सभ्यताओं के संघर्ष, बढ़ रहे जातीय भेदभाव, बढ़ती हिंसा कभी 'जेहाद' के नाम पर, कभी 'जम्हूरियत की रक्षा' के नाम पर, कभी किसी 'मजहब' या 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' के नाम पर यह सब खेला जा रहा है। इन सबके बीच एक प्रश्न हमेशा मन में कचोटता रहता है कि आखिर ये सब कब तक चलता रहेगा? आखिर कब तक निरीह मानवता इस हिंसा कि शिकार होती रहेगी? आज के मनुष्यों की अमानुषिक हरकतों से कब तक प्रकृति शर्मसार होती रहेगी? इन सभी सवालों का जवाब खोजने पर मिलता है कि इन सबकी परिणति अंततः संवाद के रास्ते ही हल हो सकती है।

मेरा आशय है कि संवादधर्मिता को अपनाकर ही किसी भी मानवीय समस्या का समाधान किया जा सकता है। ये महज संयोग है की ऐसी संवादधर्मिता का आग्रह संत रैदास की काव्य का प्रेरणा तत्त्व है। संत रैदास वाद-विवाद के बजाय संवाद की परंपरा स्थापित करते हैं। उनका मानना था कि समतामूलक समाज की स्थापना करना न्यायोचित है न कि हिन्दू-राष्ट्र, मुस्लिम-राष्ट्र या दलित-राष्ट्र की स्थापना करना। आगे चलकर डॉ. अंबेडकर भी इसी सत्य को स्वीकार किये थे, जिसका प्रतिफलन संविधान के रूप में आज हमारे सामने है ।

"संत रैदास ने अपने कुल जाति और जन्म पर जो स्वाभिमान प्रकट किया है वह अद्‌भुत है। आचरण और कर्म की गरिमा का केवल उन्होंने उद्‌घोष नहीं किया बल्कि उसके माध्यम से अपने जीवन को महिमा मंडित करके मध्ययुगीन सामाजिक चेतना को ऐसी नवीन दिशा दी जिसमें न केवल वह युग ही आलोकित हुआ बल्कि परवर्ती भारतीय समाज आज भी प्रभावित होता चला आ रहा है।"[1] रैदास की दूरदर्शी चेतना यह भली-भाँति जान चुकी थी कि वर्ग, धर्म, वर्ण आदि कारक सूत्र सामूहिक अस्मिता की जगह सामाजिक परिधि एवं अवरोध का काम ज्यादा करते हैं । इसीलिए उनका काव्य वैयक्तिक सत्ता की परिधि से बाहर निकलकर वैश्विक सत्ता के निर्माण के लिए प्रयासरत दिखता है। रैदास मानते हैं कि सभी मनुष्यों का जन्म एक सा हुआ है तो उसके लिए लैंगिक व बौद्धिक विभाजन क्यों? संत रैदास की वाणी में मुख्यतया मानव जगत में व्याप्त विषमता के स्थान पर समता की स्थापना और प्रत्येक मनुष्य को उचित मानवीय सम्मान देने की उत्कृट अभिलाषा व्यक्त हुई है। रैदास 'दलित अस्मिता' की सामाजिक भावभूमि को स्पष्ट करते हैं, दार्शनिकता की ऐतिहासिक उपस्थिती दर्ज कराते हैं और वैकल्पिक समाज का यूटोपिया भी सामनं रखते हैं, जिसमें जातिगत छुआछूत से मुक्ति, किसी प्रकार से स्वतन्त्रता और संप्रदायिकता का निषेध शामिल है ।

संत रैदास ऐसे युग का प्रतिनिधित्व करते हैं, जिसमें विलासिता, आतंक, अत्याचार, छुआछूत तथा धार्मिक आडंबर अपनी चरम सीमा पर थे। नारी विलासिता की वस्तु समझी जाती थी। बाह्य सौन्दर्य ही नारी का सबसे बड़ा आकर्षण था। यही कारण था कि प्रेम ने वासना का रूप धारण कर लिया था। लोग सात्विक प्रेम को भूलकर विलासिता कि ओर अग्रसर होने लगे थे। पराई बहू-बेटियों का अपहरण साधारण सी बात हो गई थी। "उस समय अन्य वस्तुओं के समान नारी भी संपत्ति समझी जाती थी। उसे

Scanned by CamScanner

केवल भोग की सामग्री समझा जाता था। सुंदर नारियों के लिए विकट युद्धों का आयोजन होता था। इसी कारण पर्दा तथा बाल-विवाह की प्रथाएँ चल पड़ी। राजपूतों में तो कन्या-हत्या तक कर डालने की प्रथा थी। नारी का कामुक रूप ही मध्ययुग में देखा जाता था। इसी कारण उस समय के संत-कवियों ने इंद्रियों को जीतने की प्रेरणा दी।"[2] इन्हीं सत्यों को अंगीकार करके मीरा जैसी परम अनुभूति को प्राप्त अद्‌भुत नारी संत रैदास की शिष्या बनती हैं। संत काव्य में नारी के विभिन्न रूपों के दर्शन होते हैं । गुरु रैदास और शिष्या मीराबाई की गुरु-शिष्य परंपरा भारतीय भक्ति साहित्य में एक उच्च कोटि का उदाहरण प्रस्तुत करती है। यह चिंतन का विषय है कि यदि गुरु रैदास में किसी विशेष प्रकार की प्रतिभा न होती तो राजस्थान से छलकारी मेवाड़ की बहुरानी काशी तक नहीं आई होती और रैदास का शिष्यत्व न ग्रहण करती तो क्या होता ?

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि मध्य युग में जब स्त्रियाँ केवल भोग-विलास कि वस्तुएं मानी जाती थी और मुस्लिमों के भय से वे जौहरव्रत धारण करती अथवा पति के साथ ही चिता-रोहण कर जाती थीं । उस समय निश्चित रूप से उनकी सामाजिक स्थिति अच्छी नहीं थी। परंतु रैदास ने ऐसे कालखंड में मीरा को अपनी शिष्या बनाकर उस सामाजिक रूढ़िवादी विचारों पर प्रहार किया था, जिसे कट्टरपंथियों एवं धर्म के कुटिल ठेकेदारों ने त्रुटिपूर्ण मानसिकता के माध्यम से हिन्दू समाज में स्थापित किया था । नारी जगत संत रैदास के प्रति श्रद्धावनत है ।

संत रैदास ने अपने काव्य रचनाओं में सरल और व्यावहारिक भाषाओं का प्रयोग किया। उन्हें मूर्ति पूजा और तीर्थ जैसे दिखावों में कोई विश्वास नहीं था। उन्होंने परस्पर मिल-जुलकर प्रेम से रहने के लिए उपदेश दिए थे। अनपढ़ होने के बावजूद उन्होंने मधुर तथा भक्तिपूर्ण भजनों की रचना की। संत रैदास ने कहा था कि मनुष्य अपने जन्म तथा व्यवसाय के आधार पर महान नहीं होता है उसमें सामाजिक हित, सद्‌व्यवहार और परोपकार जैसे गुण भी उसमें विद्यमान होना चाहिये। इसीलिये उन्होंने कहा कि-

जात-पांत में जात है, जो केलन की पात,
रविदास न मानुष जुड़ सकैं, जो लौ जात न जात।
जात-पांत के फेर महि, उरझी रही सबलोग,
मानुषता कूं खात हुई, रविदास जात कर रोग।

अर्थात् जात-पांत के चक्कर में सारा समाज ही जटिल हो चुका है । पूरे लोग जाति के जाल में उलझे हुए हैं और उन्होंने अपनी सोच संकीर्ण बना रखी है, जिससे मानवता की कोई जगह नहीं बची, इस जाति रूपी रोग ने मनुष्यता को नष्ट कर डाला है।

संत रविदास के भक्ति गीतों एवं दोहों ने भारत के समाज में प्रेमभाव और एकरूपता उत्पन्न करने का भरसक प्रयास किया जिससे हिन्दू और मुसलमान सौहार्द एवं सहिष्णुता पूर्वक रह सकें । इसीलिए उन्होंने गुणगान किया कि-

कृस्न, करीम, राम, हरि, राघव, जब लग एक न पेखा ।
वेद कतेब कुरान, पुरानन, सहज एक नहिं देखा।।

गुरु रविदास का सम्मान राजघराने तक में होने लगा था लेकिन उनमें जरा भी घमंड नहीं आया। संतों में शिरोमणि का स्थान प्राप्त हो जाने पर कभी भी उन्होंने अपनी जाति को नहीं छिपाया। वह हमेशा कहते थे-

Scanned by CamScanner

जाके कुटुम्ब के सब ढेढ सब ढौर ढोवत, फिरै बनारस आस-पास।

उनका कहना था कि कोई व्यक्ति अपनी जाति से नहीं बल्कि अपने कर्म से महान बनता है। इसी तरह ईश्वर भक्ति और वेदों के पठन-पाठन पर समस्त मानव जाति का अधिकार है यह किसी एक वर्ग की बपौती नहीं है। इसी को लेकर उन्होंने आजीवन संघर्ष किया। आज भी संत रैदास के उपदेश समाज के कल्याण तथा उत्थान के लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं। उन्होंने अपने आचरण तथा व्यवहार से यह प्रमाणित कर दिया है कि मनुष्य अपने जन्म तथा व्यवसाय के आधार पर महान नहीं होता है। विचारों की श्रेष्ठता, समाज के हित की भावना से प्रेरित कार्य तथा सदव्यवहार जैसे गुण ही मनुष्य को महान बनाने में सहायक होते हैं। इन्हीं गुणों के कारण संत रैदास को अपने समय के समाज में अत्यधिक सम्मान मिला और इसी कारण आज भी लोग इन्हें श्रद्धापूर्वक स्मरण करते हैं।

संदर्भ

1. युग प्रवर्तक संत गुरु रविदास, पृथ्वी सिंह, पृ. 110
2. हिन्दी संत साहित्य, त्रिलोकी नारायण दीक्षित, पृ. 15

Scanned by CamScanner